

Research Article

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं सतत विकास: एक समग्र विश्लेषण

शैवेन्द्र कुमार व्यास

सहायक आचार्य (लोक प्रशासन) राजकीय महाविद्यालय, उच्चैन (भरतपुर)

DOI: <https://doi.org/10.24321/2456.0510.202614>

INFO

Corresponding Author:

शैवेन्द्र कुमार व्यास, सहायक आचार्य (लोक प्रशासन) राजकीय महाविद्यालय, उच्चैन (भरतपुर)|

E-mail Id:

shaivendravys1978@gmail.com

Orcid Id:

<https://orcid.org/0009-0009-6731-5051>

How to cite this article:

शैवेन्द्र कुमार व्यास, भारतीय ज्ञान परंपरा एवं सतत विकास: एक समग्र विश्लेषण, Anu: a, Mul, Int, Jour, Vol 11, 2026 (Special Issue): Pg. No. 44-52

Date of Submission: 2026-03-25

Date of Acceptance: 2026-04-27

ABSTRACT

इस शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा तथा सतत विकास के मध्य घनिष्ठ एवं गहरा अंतर्संबंध बताया गया है। भारतीय चिंतन के अंतर्गत प्रकृति के साथ सामंजस्य, समन्वित, संसाधनों के संतुलित व किफायती उपयोग, नैतिक जीवनशैली तथा सामाजिक समरसता जैसे तत्वों पर गहनता के साथ विशेष बल दिया गया है जो व्यापक संदर्भ में समकालीन सतत विकास की अवधारणा के अनुरूप ही हैं। प्राचीन ग्रंथों, पारंपरिक जीवन तौर-तरीकों और व्यावहारिक अनुभवों में उदाहरणस्वरूप ऐसे अनेक सिद्धांत एवं विचार मिलते हैं जो मानव और पर्यावरण के बीच घनिष्ठता एवं संतुलन स्थापित करने पर बल देते हैं। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि निस्संदेह भारतीय ज्ञान परंपरा केवल सांस्कृतिक धरोहर नहीं है बल्कि यह व्यावहारिक दृष्टि से भी मानव जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी है। विशेषकर जल संरक्षण, जैविक कृषि, प्राकृतिक चिकित्सा और सामुदायिक जीवन जैसी व्यवस्थाएँ सतत विकास के लिए प्रभावी आधार प्रदान करती हैं। यद्यपि पारंपरिक ज्ञान का क्षरण, वैज्ञानिक प्रमाणिकता का अभाव तथा नीतिगत स्तर पर सीमित समावेशन जैसी चुनौतियाँ इसके व्यापक उपयोग में बाधा का कार्य करती हैं। अतः आवश्यक है कि इस ज्ञान परंपरा को आधुनिक शिक्षा, नीतियों और तकनीकी नवाचारों के साथ समन्वित किया जाए और व्यवहार में इस पर अमल किया जाए ताकि एक संतुलित, समावेशी और दीर्घकालिक विकास मॉडल स्थापित किया जा सके।

मुख्य शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, सतत विकास, पर्यावरणीय संतुलन, संयम व अपरिग्रह एवं सामुदायिक विकास

प्रस्तावना

समकालीन समय में वैश्विक संदर्भ में विकास की अवधारणा व्यापक और बहुआयामी रूप ग्रहण कर चुकी है जिसमें आर्थिक उन्नति के साथ-साथ सामाजिक समावेशन, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन को समान रूप से स्वीकार किया जा है। इस दृष्टिकोण के साथ सतत विकास की संकल्पना उभरकर आती है जिसका उद्देश्य ऐसी विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करे और साथ ही भविष्य की पीढ़ियों के हितों को सुरक्षित रखे अर्थात् वर्तमान में तरक्की इस प्रकार हो ताकि आने वाले समय में भी संसाधन समाप्त नहीं हो लेकिन आधुनिक युग में तीव्र औद्योगिकीकरण, बढ़ते अनियोजित एवं विस्तारित हो रहे शहरीकरण तथा उपभोक्तावादी जीवनशैली ने प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन को बढ़ावा दिया है। परिणामस्वरूप वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण पर्यावरणीय असंतुलन, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण में वृद्धि और जैव विविधता में निरंतर गिरावट, ऊर्जा संकट जैसी गंभीर समस्याओं के साथ-साथ अमीर-गरीब के बीच बढ़ती खाई, ग्रामीण पलायन, झुग्गी-झोंपड़ियों का विस्तार और सांस्कृतिक क्षरण इत्यादि समस्याएं आज वैश्विक समुदाय के समक्ष उत्पन्न हुई हैं।

इन वर्तमान चुनौतियों के समाधान के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा एक संतुलित, समन्वित, वैकल्पिक और दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह परंपरा प्राचीन काल से ही मानव और प्रकृति के बीच गहरे संबंध तथा पारस्परिक निर्भरता संबंध को स्वीकार करती रही है। साथ ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संतुलन, संयम तथा नैतिकता जैसे मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करती है। वैदिक साहित्य और उपनिषदों के अंतर्गत प्रकृति को पूजनीय माना गया है, जिससे संरक्षण और सह-अस्तित्व की भावना को बढ़ावा मिलता है। आयुर्वेद में भी मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के बीच घनिष्ठ एवं गहन अंतर्संबंध को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है, जो स्वस्थ एवं संतुलित जीवनशैली का पथप्रदर्शन करता है।

इसके अलावा, भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था और पारंपरिक कृषि प्रणालियाँ स्थानीय संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देती हैं। सामुदायिक जीवन, आत्मनिर्भरता और स्थानीय स्तर पर संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन की परंपरा सतत विकास के सिद्धांतों को मजबूत बनाती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा में सम्पूर्ण संसार को एक परिवार के रूप में स्वीकार किया गया है जहां प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

वसुधैव कुटुम्बकम् का दर्शन वैश्विक एकता, मानवता में सहयोग, सह-अस्तित्व, पारस्परिक सम्मान और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहित करता है, जो सतत विकास के मूल तत्वों के अनुरूप है जिसमें आर्थिक प्रगति के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक समानता व न्याय को समान महत्व दिया जाता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की सांस्कृतिक धरोहर नहीं है, बल्कि यह वर्तमान और भविष्य जटिल समस्याओं के समाधान के लिए एक सशक्त एवं प्रासंगिक आधार भी प्रदान करती है। अतः स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा सतत विकास की दिशा को एक मजबूत आधार दे सकती है। विकास नीतियों और योजनाओं के क्रियान्वन में यदि इसके मूल सिद्धांतों को प्रभावी ढंग से समाहित किया जाए निश्चित ही एक संतुलित, समावेशी और पर्यावरण-अनुकूल विकास मॉडल स्थापित किया जा सकता है जो दीर्घकालिक रूप से मानव समाज और प्रकृति के संरक्षण की दृष्टि से लाभकारी ही रहेगा।

शोध उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य लक्ष्य भारतीय ज्ञान परंपरा के आधारभूत सिद्धांतों और विचारों को गहराई से समझना तथा उनका व्यवस्थित विश्लेषण करना है। इसके साथ ही, यह शोध इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि पारंपरिक भारतीय चिंतन किस प्रकार सतत विकास की अवधारणा के साथ सामंजस्य एवं संतुलन स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त अध्ययन के उद्देश्यों में भारतीय ज्ञान प्रणाली के व्यावहारिक पक्षों की पहचान करना है और आधुनिक विकास नीतियों और योजनाओं में इन पारंपरिक सिद्धांतों के समावेशन की संभावनाओं का भी परीक्षण किया गया है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक प्रकृति का है और यह मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसके अंतर्गत विभिन्न पुस्तकों, शोध आलेखों, सरकारी दस्तावेजों तथा पारंपरिक भारतीय ग्रंथों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। उपलब्ध साहित्य का तुलनात्मक परीक्षण करते हुए विषय के विभिन्न पहलुओं को समझने और उससे निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा: एक परिचय - भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम बौद्धिक धरोहरों में से एक मानी जाती है। यह परंपरा मानव जीवन को केवल भौतिक उन्नति तक सीमित नहीं रखती बल्कि यह परंपरा जीवन को व्यापक एवं दृष्टिकोण से देखने पर बल देती है। यह दृष्टि मानव अस्तित्व के विविध आयामों को संतुलित रूप से समझने पर बल देती है। इस ज्ञान की जड़ें वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, पुराण, आयुर्वेद, योग तथा विभिन्न लोक परंपराएँ हैं। ऋग्वेद में विशेषकर प्रकृति और मानव के बीच संतुलन एवं सामंजस्य को विशेष महत्व दिया गया है। एक प्रसिद्ध मंत्र में पृथ्वी को माता और मनुष्य को उसका पुत्र कहा गया है— “माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः” अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। यह विचार पर्यावरण के प्रति सम्मान, संरक्षण और जिम्मेदारी की भावना को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करता है।

इसी प्रकार ईशोपनिषद का प्रसिद्ध वाक्य— “ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्” यह संकेत देता है कि सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही दिव्य तत्व व्याप्त है। अतः संसाधनों का उपभोग संयम और जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए। यह विचार आधुनिक सतत विकास की अवधारणा के अत्यंत निकट है, जहाँ सीमित संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल दिया जाता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार संतुलन है। यह संतुलन केवल भौतिक संसाधनों के उपयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति और समाज के संबंधों के साथ-साथ भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय स्थापित करने पर भी जोर देता है। भगवद्गीता में भी संतुलित पद्धति का महत्व स्पष्ट करते हुए कहा गया है — “युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु” —अर्थात् संयमित आहार-विहार और संतुलित आचरण ही श्रेष्ठ जीवन की आधारशिला है।²

भारतीय ज्ञान परंपरा में “धर्म” की अवधारणा अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कर्तव्य, नैतिकता और न्यायसंगत आचरण का प्रतिनिधित्व करती है। प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में मनुस्मृति का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अंतर्गत समाज के संगठन और व्यक्तिगत आचरण के नियम निर्धारित किये गये हैं और आचार संहिता के रूप में सत्य, अहिंसा, संयम, शुचिता और अनुशासन जैसे मूल्यों पर बल दिया गया है। इस प्रकार मनुस्मृति में सामाजिक व व्यक्तिगत आचरण तथा नैतिक आचरण नियमों के माध्यम से समाज एवं व्यक्ति दोनों के संतुलित विकास की राह का मार्गदर्शन करती है। इसमें सामाजिक व्यवस्था और आचार संहिता के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति का आचरण समाज और प्रकृति दोनों के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण होना चाहिए।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में स्वास्थ्य और जीवनशैली को भी प्रकृति के अनुरूप ढालने पर विशेष बल दिया गया है। आयुर्वेद में शरीर, मन और आत्मा के संतुलन को ही स्वास्थ्य का आधार माना गया है। यह दृष्टिकोण आज के आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में समग्र स्वास्थ्य के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त, महाउपनिषद में वर्णित “वसुधैव कुटुम्बकम्” जैसे सिद्धांत संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की भावना को प्रकट करते हैं। यह विचार मानवता, सह-अस्तित्व, वैश्विक सहयोग, सामाजिक समावेशन और समानता को बढ़ावा देता है, जो आज के सतत विकास लक्ष्यों के अनुरूप है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत और प्रासंगिक ज्ञान प्रणाली है जो वर्तमान समय की जटिल चुनौतियों—विशेषकर पर्यावरणीय संकट, सामाजिक असंतुलन और नैतिक अवनति का समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम है। यह परंपरा हमें संदेश देती है कि वास्तविक विकास वही माना जा सकता है जिसमें मानव और प्रकृति दोनों के हितों का संतुलित संरक्षण सुनिश्चित हो।

सतत विकास की अवधारणा - सतत विकास एक ऐसी समग्र विकास दृष्टि है जिसका लक्ष्य वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के हितों और संसाधनों की रक्षा करना है। यह विचार इस समझ पर आधारित है कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और उनका उपयोग संतुलित एवं जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए। असीमित एवं अनियंत्रित दोहन के कारण पर्यावरणीय असंतुलन व संकट, सामाजिक असमानता और आर्थिक अस्थिरता जैसी समस्याओं को उत्पन्न होती हैं। इसलिए विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार संचालित करना आवश्यक है ताकि आर्थिक प्रगति, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन एवं सामंजस्य बना रहे। इस अवधारणा को वैश्विक स्तर पर स्पष्ट रूप से 1987 में ब्रंटलैंड रिपोर्ट में प्रस्तुत किया गया, जिसमें विकास को इस रूप में परिभाषित किया गया कि विकास केवल वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करना नहीं है बल्कि भविष्य की पीढ़ियों की संभावनाओं को भी सुरक्षित रखना है। इस रिपोर्ट ने यह रेखांकित किया कि विकास केवल उत्पादन और उपभोग में वृद्धि नहीं है बल्कि इसका लक्ष्य जीवन की गुणवत्ता में सुधार होना चाहिए।³

सतत विकास के तीन प्रमुख आयाम होते हैं – आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय जो एक दूसरे से परस्पर जुड़े हुए हैं। यदि इनके मध्य संतुलन स्थापित करते हुए विकास की नीतियाँ बनाई जाएँ तो निश्चित ही दीर्घकालीन विकास संभव है।

सामाजिक दृष्टि से सतत विकास समान अवसरों की स्थापना पर जोर देता है ताकि अमीरी-गरीबी के मध्य खाई में कमी लाई जा सके और शिक्षा व स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके ताकि विकास प्रक्रिया में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित हो सके। पारिस्थितिक संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में यह अवधारणा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ-साथ जैव विविधता के संवर्धन एवं प्रदूषण नियंत्रण पर बल देती है।

वैश्विक स्तर पर सतत विकास को प्रोत्साहित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने 2015 में '2030 एजेंडा' के अंतर्गत 17 सतत विकास लक्ष्य निर्धारित किये हैं। 17 सतत विकास लक्ष्य इस प्रकार हैं- गरीबी समाप्त करना, भूखमुक्ति, अच्छा स्वास्थ्य और कल्याण, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, स्वच्छ जल एवं स्वच्छता, सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा, सम्मानजनककारी और आर्थिक वृद्धि, उद्योग, नवाचार तथा आधारभूत संरचना, असमानताओं में कमी, सतत शहर और समुदाय, जिम्मेदार उपभोग और उत्पादन, जलवायु कार्यवाही, जल के नीचे जीवन, स्थलीय जीवन, शांति, न्याय और सशक्त संस्थाएं और लक्ष्यों हेतु साझेदारी। सतत विकास लक्ष्य रिपोर्ट 2023 द्वारा प्रस्तुत मध्यकालीन मूल्यांकन के अनुसार वैश्विक स्तर पर एसजीडीस के कई लक्ष्य बहुत धीमी गति से आगे बढ़ रहे हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार कोविड-19, जलवायु परिवर्तन, आर्थिक अस्थिरता एवं युद्ध एवं भू-राजनीतिक तनाव ने प्रगति को प्रभावित किया है। अतः 2030 तक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समन्वित नीतियों बनाने के साथ-साथ मजबूत शासन व्यवस्था और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को और अधिक सशक्त करने की आवश्यकता है।⁴

सतत विकास की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण आयाम "अंतरपीढ़ी समानता" है, जिसका अभिप्राय है कि वर्तमान विकास भविष्य की संभावनाओं को सीमित न करे अर्थात् समकालीन समय जो विकास प्रक्रिया चल रही है वह दीर्घकालीन, संतुली एवं जिम्मेदार हो जिससे की भविष्य में यापार संभवनाएं बनें। इसके साथ ही "अंतःपीढ़ी समानता" भी उतनी ही आवश्यक है जो वर्तमान समाज में संसाधनों के समावेशी एवं न्यायपूर्ण वितरण पर बल देती है।

यह अवधारणा केवल नीतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति और समाज के व्यवहार से भी व्यापक, व्यावहारिक एवं गहनता से जुड़ी है। ऊर्जा की बचत, जल संरक्षण, पुनर्चक्रण, और संसाधनों के किफायती एवं जिम्मेदार उपभोग जैसे छोटे-छोटे प्रयास भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

समग्र रूप से, सतत विकास एक समन्वित, समग्र, संतुलित और प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो विकास को केवल आर्थिक उपलब्धियों तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के साथ जोड़ता है। यह वर्तमान और भविष्य के बीच एक मजबूत, टिकाऊ एवं स्थायी सेतु का कार्य करता है, जिससे एक सुरक्षित, समावेशी और पर्यावरण-अनुकूल विश्व का निर्माण संभव हो सके।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (2020) की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार, “विकास का वास्तविक उद्देश्य सभी लोगों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना है।”

भारतीय ज्ञान परंपरा और सतत विकास का अंतर्संबंध

भारतीय ज्ञान परंपरा में विकास की धारणा बहुआयामी रही है, जिसमें आर्थिक उन्नति के साथ नैतिक अनुशासन, सामाजिक संतुलन और पर्यावरणीय संरक्षण को समान महत्व दिया गया है। यह परंपरा मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसके साथ सह-अस्तित्व में रहने वाला चेतन तत्व मानती है। इसी कारण भारतीय चिंतन में संसाधनों के उपयोग को मर्यादित, उत्तरदायी और दीर्घकालिक दृष्टि से संचालित करने की बात कही गई है, जो आधुनिक सतत विकास की अवधारणा के मूल तत्वों के साथ गहराई से सामंजस्य स्थापित करती है।

वैदिक साहित्य में प्रकृति के प्रति आदर, संवेदनशीलता और संरक्षण का स्पष्ट बोध मिलता है। ऋग्वेद में पृथ्वी को ‘माता’ तथा मनुष्य को उसका ‘पुत्र’ कहा गया है, जिससे मानव और प्रकृति के बीच आत्मीय संबंध स्थापित होता है। इसी प्रकार यजुर्वेद में प्राकृतिक शक्तियों के साथ संतुलित और कल्याणकारी संबंध की कामना की गई है। इन वैदिक दृष्टांतों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में पर्यावरण संरक्षण केवल दायित्व नहीं, बल्कि आचार का अंग था।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में ‘अपरिग्रह’ का सिद्धांत विशेष महत्व रखता है, जो अनावश्यक संचय सेके परित्याग की प्रेरणा देता है। पतंजलि योगसूत्र के अंतर्गत इसे आत्मसंयम का मुख्य अंग माना गया है। यह सिद्धांत संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को सुनिश्चित करता है और उपभोग की प्रवृत्ति को नियंत्रित एवं सीमित करता है। समकालीन समय में, जहाँ उपभोक्तावाद और असीमित उपभोग पर्यावरणीय संकट को जन्म दे रहे हैं, वहाँ यह विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है।

इसी क्रम में ‘संयम’ की अवधारणा भी महत्वपूर्ण है जो मानव जीवन का एक ऐसा सद्गुण है जो व्यक्ति को संतुलित एवं अनुशासित जीवन जीने का मंत्र देता है। संयम का अभिप्राय स्व इच्छाओं, भावनाओं एवं व्यवहार पर नियंत्रण रखने से है। यह व्यक्ति को अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रेरणा देती है। यह केवल व्यक्तिगत अनुशासन का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का भी आधार भी है। सीमित उपभोग की यह प्रवृत्ति संसाधनों के संरक्षण और उनके न्यायसंगत वितरण को प्रोत्साहित करती है, जिससे सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

उपनिषदों में दीर्घकालिक दृष्टि और नैतिक विवेक को विशेष महत्व दिया गया है। कठोपनिषद में ‘श्रेय’ और ‘प्रेय’ का जो विवेचन प्रस्तुत किया गया है। श्रेय एक ऐसा मार्ग है मानव को जो नैतिक व आत्मिक उन्नति तथा दीर्घकालिक हित की ओर ले जाता है जबकि प्रेय ऐसा सुख है जो भौतिक वस्तुओं से मिलता है और यह विलासी तथा बिना मेहनत के प्राप्त होने वाला क्षणिक एवं अस्थायी सुख है। उक्त विवेचन यह स्पष्ट करता है कि स्थायी और कल्याणकारी मार्ग अर्थात् श्रेय को चुनना ही वास्तविक बुद्धिमत्ता है। यह विचार आधुनिक विकास मॉडल के लिए अत्यंत उपयोगी है, जहाँ तात्कालिक लाभ के स्थान पर भविष्य की पीढ़ियों के हितों को सुरक्षित रखना आवश्यक है।

भारतीय परंपरा में ‘समष्टि कल्याण’ की अवधारणा भी सतत विकास के सामाजिक आयाम को सुदृढ़ करती है। महाभारत में लोकहित को सर्वोपरि माना गया है, जो यह दर्शाता है कि समाज के समग्र विकास के बिना व्यक्तिगत उन्नति अधूरी है। भगवद्गीता का यह श्लोक इस संबंध में महत्वपूर्ण है – “लोकहितसंग्रहमेवापी संपश्यन्कर्तुर्महसि।” अर्थात् मानव को स्वहित को छोड़कर लोकसंग्रह के संरक्षण एवं कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। एक अन्य श्लोक में भी लोकहित की बात कही गई है – “सर्वभूतहीते रतः।” अर्थात् श्रेष्ठ व महान व्यक्ति सदैव दूसरों के कल्याण में लगा रहता है। लोकहित का विचार संसाधनों के समान वितरण, सामाजिक न्याय और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहित करता है। इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य के ग्रंथ तैत्तिरीय उपनिषद में निहित शिक्षाएँ मानवीय संबंधों के साथ-साथ प्रकृति के प्रति सम्मान और संवेदनशीलता को भी प्रोत्साहित करती हैं। इसमें मानव जीवन के संतुलन, नैतिक एवं संवेदनशील दृष्टिकोण पर बल दिया गया है। प्रकृति के प्रति सम्मान की भावना इस ग्रंथ में वर्णित की गई है – “अन्नं न निच्छात। तद्व्रतम्।” अर्थात् अन्न की निंदा नहीं करनी

चाहिए; यह एक व्रत है। इस प्रकार इसमें प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों के प्रति सम्मान व कृतज्ञता एवं संरक्षण का संदेश दिया गया है। इस ग्रंथ में वर्णित शिक्षाएं व्यक्ति को जिम्मेदार नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करती हैं, जो पर्यावरणीय संतुलन और सामाजिक समरसता दोनों के लिए आवश्यक है। भारतीय ज्ञान परंपरा का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष 'संतुलन' की अवधारणा है, जिसमें जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक आयामों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की बात कही गई है। यह संतुलन ही सतत विकास का आधार है, क्योंकि केवल आर्थिक वृद्धि पर आधारित विकास अंततः असंतुलन और संकट को जन्म देता है। भगवद्गीता में एक श्लोक है-

नात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्रतः।

न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥”

इसमें अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा गया है कि न तो अधिक खाने वाले का योग सिद्ध होत है और न ही बिल्कुल कुछ न खाने वाले का योग सिद्ध होता है अर्थात् इसमें बताया गया है कि संतुलित जीवन जीना चाहिए तभी कल्याण संभव है। इस श्लोक का संदेश यह है कि अति से बचना चाहिए। आज के भौतिकवादी मनुष्य की उपभोग की अनियंत्रित प्रवृत्ति एवं प्राकृतिक संसाधनों के हास के परिप्रेक्ष्य में यह पर्यावरणीय संतुलन का आधार है और संतुलित व संयमित जीवन सतत उपभोग को संभव बनाता है। एक अन्य श्लोक में जीवन में संतुलन की शिक्षा दी गई है जो समकालीन समय में पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास से गहनता से जुड़ी हुई है -

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥”

अतः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में अंतर्निहित सिद्धांत यथा अपरिग्रह, संयम, दीर्घकालिक दृष्टि, समष्टि कल्याण और प्रकृति के प्रति सम्मान आधुनिक सतत विकास की अवधारणा के साथ पूर्णतः संगत हैं। यह परंपरा हमें यह सिखाती है कि विकास केवल संसाधनों के अधिकतम उपयोग का नाम नहीं बल्कि उनके संतुलित, न्यायपूर्ण और दूरदर्शी प्रबंधन की प्रक्रिया है। यदि इन सिद्धांतों को समकालीन नीतियों और जीवनशैली में समाहित किया जाए तो यह न केवल पर्यावरणीय संकटों का समाधान प्रदान कर सकते हैं बल्कि एक अधिक संतुलित और मानवीय समाज की स्थापना में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।⁵

आर्थिक असमानता भी एक प्रमुख वैश्विक चुनौती है। वर्ड बैंक तथा इंटरनेशनल मॉनेटरी फंड की रिपोर्टों के अनुसार वैश्विक आय-वितरण में असंतुलन बढ़ रहा है, जिससे सामाजिक अस्थिरता और असंतोष उत्पन्न हो रहा है। भारतीय चिंतन में 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' का सिद्धांत विकास को समावेशी और न्यायपूर्ण बनाने की प्रेरणा देता है। यहाँ आर्थिक गतिविधियों को केवल लाभ तक सीमित न रखकर सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा गया है, जो आज के 'इन्क्लूसिव ग्रोथ और सोशल इक्विटी के विचारों से मेल खाता है।

मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी आधुनिक जीवनशैली गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न कर रही है। वर्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन के अनुसार अवसाद और चिंता के मामलों में निरंतर वृद्धि हो रही है, विशेषकर युवाओं और शहरी आबादी में। प्रतिस्पर्धा, डिजिटल निर्भरता और सामाजिक अलगाव इसके प्रमुख कारण हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में योग, ध्यान और प्राणायाम जैसी विधियाँ मानसिक संतुलन और आत्मिक शांति प्रदान करती हैं। आज विश्वभर में योग को अपनाया जाना इस बात का प्रमाण है कि यह परंपरा केवल सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि व्यावहारिक समाधान भी प्रदान करती है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन की आवश्यकता स्पष्ट रूप से अनुभव की जा रही है। यूनेस्को ने अपनी रिपोर्टों में यह स्पष्ट किया है कि शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रखकर मूल्य-आधारित और जीवनोपयोगी बनाना आवश्यक है। भारतीय शिक्षा परंपरा में 'विद्या' का उद्देश्य व्यक्ति के समग्र विकास—शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक—को सुनिश्चित करना रहा है। यह दृष्टिकोण आज की परीक्षा-केंद्रित प्रणाली को अधिक मानवीय और सृजनात्मक बना सकता है।

सामाजिक और वैश्विक स्तर पर भी भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्व अत्यधिक है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धांत विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा देता है, जो आज के विभाजित और संघर्षपूर्ण अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में अत्यंत प्रासंगिक है। यूनाइटेड नेशंस द्वारा

निर्धारित सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजीस) में भी समानता, शांति और साझेदारी को प्राथमिकता दी गई है, जो भारतीय चिंतन की मूल भावना से सामंजस्य रखते हैं। तकनीकी और डिजिटल युग में भी भारतीय ज्ञान परंपरा मार्गदर्शन प्रदान करती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डेटा गोपनीयता और साइबर नैतिकता जैसे नए मुद्दों के समाधान हेतु 'धर्म' और 'कर्तव्य' आधारित दृष्टिकोण अत्यंत उपयोगी हो सकता है। यह दृष्टिकोण तकनीक के उपयोग को मानवीय मूल्यों और नैतिकता से जोड़ता है, जिससे विकास अधिक उत्तरदायी और संतुलित बनता है। इसके अतिरिक्त, प्रशासनिक और नीतिगत क्षेत्र में भी भारतीय ज्ञान परंपरा की उपयोगिता स्पष्ट है। 'लोककल्याणकारी राज्य' की अवधारणा, पारदर्शिता, सहभागिता और उत्तरदायित्व जैसे तत्व प्राचीन भारतीय चिंतन में विद्यमान रहे हैं। इन सिद्धांतों का समावेश आधुनिक शासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी और जनोन्मुख बना सकता है।⁶⁻⁷

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा वर्तमान समय की जटिल चुनौतियों के समाधान हेतु एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करती है। यह परंपरा विकास को संतुलन, नैतिकता और सह-अस्तित्व के साथ जोड़ती है, जिससे एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण संभव है जो न केवल वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करे, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित और समृद्ध वातावरण सुनिश्चित करे। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा आज के वैश्विक परिदृश्य में न केवल प्रासंगिक है, बल्कि एक मार्गदर्शक शक्ति के रूप में उभर रही है।

चुनौतियाँ एवं समाधान

भारतीय ज्ञान परंपरा को सतत विकास के साथ प्रभावी रूप से जोड़ने में अनेक जटिल चुनौतियाँ सामने आती हैं, जो इसके व्यावहारिक उपयोग को सीमित करती हैं। पहली और सबसे महत्वपूर्ण चुनौती पारंपरिक ज्ञान के निरंतर क्षरण की है। तेजी से बढ़ते शहरीकरण, तकनीकी विस्तार और वैश्वीकरण के प्रभाव में स्थानीय समुदायों की जीवनशैली में व्यापक परिवर्तन आया है। इसके परिणामस्वरूप पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने वाला अनुभवजन्य ज्ञान कमजोर होता जा रहा है। सतत विकास लक्ष्य रिपोर्ट 2023 में यह रेखांकित किया गया है कि स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी के बिना सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति संभव नहीं है, किंतु व्यवहार में यही समुदाय पारंपरिक ज्ञान से दूर होते जा रहे हैं।

दूसरी प्रमुख समस्या वैज्ञानिक सत्यापन और मानकीकरण से जुड़ी है। भारतीय ज्ञान परंपरा का अधिकांश भाग मौखिक परंपरा, अनुभव और स्थानीय संदर्भों पर आधारित है, जिसे आधुनिक वैज्ञानिक ढांचे में प्रमाणित करना चुनौतीपूर्ण होता है। विश्व बौद्धिक संपदा संगठन ने भी पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण और उसके विधिक ढांचे के अभाव को एक महत्वपूर्ण वैश्विक मुद्दा माना है। जब तक इस ज्ञान का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण और वैज्ञानिक परीक्षण नहीं किया जाएगा, तब तक नीति-निर्माण में इसका प्रभावी उपयोग सीमित रहेगा।

तीसरी चुनौती नीतिगत और संस्थागत स्तर पर समुचित समावेशन की कमी है। वर्तमान विकास मॉडल प्रायः औद्योगिक और तकनीकी समाधानों पर आधारित होते हैं, जिनमें स्थानीय ज्ञान और परंपरागत पद्धतियों को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता। नीति आयोग द्वारा समय-समय पर सामुदायिक संसाधनों और स्थानीय ज्ञान के उपयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया है, फिर भी इन विचारों का व्यापक क्रियान्वयन अभी प्रारंभिक स्तर पर ही है।

इसके अतिरिक्त, उपभोक्तावाद और संसाधनों के अत्यधिक उपयोग की प्रवृत्ति भी एक बड़ी बाधा के रूप में उभरती है। भारतीय दर्शन में "संयम" और "अपरिग्रह" जैसे मूल्यों को महत्व दिया गया है, किंतु आधुनिक जीवनशैली में त्वरित उपभोग और अधिक संचय की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 यह दर्शाती है कि संसाधनों का असमान वितरण और अत्यधिक उपभोग पर्यावरणीय असंतुलन को बढ़ा रहे हैं, जो सतत विकास के लिए गंभीर चुनौती है। एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या जागरूकता और शिक्षा से संबंधित है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भारतीय ज्ञान परंपरा के व्यावहारिक पहलुओं को पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाता, जिसके कारण नई पीढ़ी इसके महत्व और उपयोगिता से अनभिज्ञ रह जाती है। अंततः, यह स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में सतत विकास के लिए आवश्यक सभी मूलभूत तत्व मौजूद हैं, किंतु उनके प्रभावी उपयोग के लिए वैज्ञानिक मान्यता, नीतिगत समर्थन, संस्थागत ढांचा और सामाजिक जागरूकता

को सुदृढ़ करना आवश्यक है। जब तक इन चुनौतियों का समुचित समाधान नहीं किया जाएगा, तब तक इस परंपरा का पूर्ण लाभ प्राप्त करना संभव नहीं हो सकेगा। भारतीय ज्ञान परंपरा को सतत विकास की मुख्यधारा में प्रभावी रूप से स्थापित करने के लिए बहुआयामी और व्यावहारिक कदम उठाना आवश्यक है। सबसे पहले, शिक्षा व्यवस्था में इस ज्ञान प्रणाली का समुचित समावेश किया जाना चाहिए। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भारतीय दर्शन, पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान, लोक-आधारित कृषि पद्धतियाँ तथा नैतिक मूल्यों—जैसे संयम और अपरिग्रह—को शामिल करने से नई पीढ़ी में संतुलित और उत्तरदायी दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है। इससे ज्ञान केवल सैद्धांतिक न रहकर व्यवहारिक जीवन का हिस्सा बनेगा।⁸⁻⁹

दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण और वैज्ञानिक प्रमाणीकरण से संबंधित है। अनेक स्थानीय और लोक-आधारित ज्ञान प्रणालियाँ आज भी मौखिक रूप में विद्यमान हैं, जिन्हें व्यवस्थित रूप से संकलित और संरक्षित करना आवश्यक है। इसके साथ ही, आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से इनका परीक्षण और मानकीकरण किया जाना चाहिए, ताकि इन्हें नीति-निर्माण और विकास योजनाओं में प्रभावी रूप से शामिल किया जा सके।

तीसरा, नीतिगत स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। सरकार और संबंधित संस्थाओं को ऐसी योजनाएँ विकसित करनी चाहिए, जिनमें स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक पद्धतियों का उपयोग प्राथमिकता के आधार पर किया जाए। विशेष रूप से ग्रामीण विकास, जल प्रबंधन, कृषि और स्वास्थ्य के क्षेत्रों में पारंपरिक ज्ञान का समावेश सतत विकास को अधिक प्रभावी बना सकता है।

चौथा, सामुदायिक भागीदारी को सुदृढ़ करना आवश्यक है। स्थानीय समुदायों के पास अपने परिवेश के अनुरूप विकसित ज्ञान और अनुभव होता है, जो सतत विकास के लिए अत्यंत उपयोगी है। इसलिए विकास योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में इन समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। इससे न केवल योजनाओं की प्रभावशीलता बढ़ेगी, बल्कि स्थानीय स्तर पर स्वामित्व और उत्तरदायित्व की भावना भी विकसित होगी।

पाँचवाँ, जन-जागरूकता और व्यवहार परिवर्तन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मीडिया, सामाजिक अभियान और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को यह समझाया जाना आवश्यक है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित सिद्धांत—जैसे सीमित उपभोग, संसाधनों का संरक्षण और प्रकृति के साथ संतुलन—आज की समस्याओं के समाधान में कितने महत्वपूर्ण हैं।¹⁰⁻¹²

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा समकालीन समय में अत्यंत उपयोगी एवं प्रासंगिक है। वर्तमान युग में भौतिक विकास के साथ-साथ मानसिक तनाव, पर्यावरणीय संकट एवं सामाजिक असंतुलन की स्थिति निरंतर बढ़ती जा रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा के आधारभूत सिद्धान्त सह-अस्तित्व, संयम, अपरिग्रह, संतुलन एवं सामंजस्य जीवन को संतुलित करने के साथ-साथ नैतिक एवं समग्र दृष्टि से देखने की प्रेरणा देती है। हमारी परंपरा का दृष्टिकोण है; आर्थिक प्रगति के साथ-साथ मानव कल्याण, सामाजिक समरसता और प्रकृति का संरक्षण सुनिश्चित करना। आज के विभाजित विश्व को बांधकर रखने के लिए वसुधैव कुटुंबकम् की संकल्पना जरूरी है। अतः सारांशतः भारतीय ज्ञान परंपरा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी पूर्व में थी। आवश्यकता है इसे आधुनिक संदर्भ में समझना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ अपनाने की।

संदर्भ सूची

- 1 ऋग्वेद (2009), *ऋग्वेद संहिता* (संपा. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य). शांतिकुंज, हरिद्वार।
- 2 ईशोपनिषद (2010), *ईशोपनिषद* (गीता प्रेस संस्करण). गीता प्रेस, गोरखपुर।
- 3 व्यास (2016), *श्रीमद्भगवद्गीता* (गीता प्रेस संस्करण). गीता प्रेस, गोरखपुर।
- 4 पतंजलि (2015), *पतंजलि योगसूत्र* (स्वामी विवेकानन्द व्याख्या सहित). अद्वैत आश्रम, कोलकाता।

- 5 वर्ल्ड कमीशन ऑन एनवायरनमेंट एंड डेवलपमेंट (1987), *आवर कॉमन फ्यूचर*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- 6 संयुक्त राष्ट्र (2015), *ट्रांसफॉर्मिंग आवर वर्ल्ड: द 2030 एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट*।
- 7 संयुक्त राष्ट्र (2023), *सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स रिपोर्ट*, संयुक्त राष्ट्र प्रकाशन।
- 8 नीति आयोग. (2021), *एसडीजी इंडिया इंडेक्स एवं डैशबोर्ड रिपोर्ट*, भारत सरकार।
- 9 विश्व बौद्धिक संपदा संगठन. (2017). *पारंपरिक ज्ञान और बौद्धिक संपदा*।
- 10 चैनसेल, एल., पिकेटी, टी., साएज़, ई., जुक्रमन, जी. आदि (2022), *वर्ल्ड इनइक्वालिटी रिपोर्ट 2022*. वर्ल्ड इनइक्वालिटी लैब।
- 11 गाडगिल, एम., एवं गुहा, आर. (1995), *इकोलॉजी एंड इकिटी: द यूज़ एंड एब्यूज़ ऑफ नेचर इन कंटेम्परेरी इंडिया*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- 12 शिवा, वंदना (2005), *अर्थ डेमोक्रेसी: जस्टिस, सस्टेनेबिलिटी एंड पीस* साउथ एंड प्रेस।